भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आईआईटीज़) में अंडरग्रैजुएट शिक्षा पर पुनर्विचार
Rethinking Undergraduate Education in the IITs

अनुराग मेहरा
Anurag Mehra
August 25, 2014

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आईआईटीज़) की स्थापना लगभग पाँच दशक पूर्व विज्ञान पर आधारित विकास के प्रति पं. नेहरू की गहरी निष्ठा से प्रेरित नये भारत को पुनर्जीवित करने के लिए उसे प्रौद्योगिकीय नेतृत्व प्रदान करने के उद्देश्य से की गई थी. इन संस्थानों ने भारत को प्रौद्योगिकीय नेतृत्व प्रदान किया या नहीं, यह विवाद का विषय हो सकता है, क्योंकि यहाँ के अधिकांश (अंडर) ग्रैजुएट या तो विदेश चले गए या फिर उन्होंने गैर-तकनीकी कैरियर अपना लिया. जब नेहरू की दृष्टि के अनुरूप इन संस्थानों की स्थापना हुई थी, तब से अब तक भारत में बहुत-सा बदलाव आ गया है. इसलिए इन सवालों का जबाव हमें खोजना होगाः भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आईआईटीज़) ने खास तौर पर अपने मूल अंडरग्रैजुएट प्रोग्रामों को समय की माँग के अनुरूप कैसे बदला है? इन संस्थानों की आईआईटी अंडरग्रैजुएट शिक्षा और संस्कृति में कुछ ऐसे कारक तत्व हैं जिनके कारण अप्रत्याशित गति से इसकी शिक्षा और संस्कृति नये-नये आकार ग्रहण कर रही है और ये तत्व प्रवेश और निर्गम दोनों ही स्तरों पर सक्रिय रहते हैं. प्रवेश के स्तर पर इनका संबंध प्रसिद्ध संयुक्त प्रवेश परीक्षा (जेईई) से होता है और निर्गम के स्तर पर ये तत्व गैर-तकनीकी कार्यों के अनुरूप प्लेसमैंट पैटर्न से प्रभावित होते हैं.

प्रवेश स्तर पर मूल चुनौती कोचिंग फ़ैक्टरियों के प्रत्यक्ष और सूक्ष्म प्रभावों से निपटने की है. आज प्रवेश पाने वाले अधिकांश विद्यार्थियों ने किसी न किसी रूप में कोचिंग ज़रूर ली होती है. बच्चे अक्सर चार से पाँच साल तक कोचिंग लेते हैं और यह प्रक्रिया माध्यमिक स्कूल से शुरू होती है. इसका परिणाम यह होता है कि उनकी खूब घिसाई होती है और उनकी सृजनात्मक क्षमता कम होने लगती है और अंततः विज्ञान और तकनीकी विषयों में उनकी रुचि कम होने लगती है. बहरहाल कोचिंग के कारण भारत में स्कूली शिक्षा की बहुत-सी खामियाँ ज़रूर कुछ हद तक ठीक हो जाती हैं.

परंतु विद्यार्थी जब हाई स्कूल में प्रवेश करते हैं तो उनके नकारात्मक प्रभाव सामने आने लगते हैं और उनका मात्र एक ही मकसद रह जाता है कि वे प्रतियोगी परीक्षाओं में किसी तरह सफल हो जाएँ. एक स्तर पर उनके पास अपनी अन्य रुचियों और किशोर जीवन की "साधारण" आनंद की बातों के लिए भी समय ही नहीं रह जाता. ढेर-सी समस्याओं को सुलझाने के तौर-तरीकों की खोज करते-करते सृजनात्मकता या उत्सुकता के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जाती. विद्यार्थी सवालों के उत्तर देना तो सीख जाते हैं, लेकिन सवाल करना भूल जाते हैं, खास तौर पर वे सवाल जिनका जीवन में बहुत महत्व होता है. प्रतियोगिता का गहरा दबाव एक ऐसा वातावरण पैदा कर देता है जो गहरी चिंता को जन्म देता है और उसके कारण उसे अपने भीतर किसी कमी का एहसास होने लगता है और वह अपमान के घूँट पीने लगता है. यह बात तो निश्चित है कि हाइपर-कंपटीशन का यह अनुभव उस अग्नि-परीक्षा से बहुत अलग नहीं है जिसकी आँच से अन्य अनेक एशियाई देशों के बच्चे झुलस रहे हैं. परंतु अलग-अलग देशों के विद्यार्थी अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक विशिष्टताओं के कारण अलग-अलग चुनौतियाँ झेलते हैं. एक बार आईआईटी में प्रवेश पा लेने के बाद अनेक विद्यार्थी जैसे- जैसे संस्थान की चुनौतियों के साथ सामंजस्य बिठाने लगते हैं, वे अपने ढंग से सामान्य होने का प्रयास भी करने लगते हैं.

पहला सवाल जो विद्यार्थियों के सामने आता है, वह है क्या सीखें और क्यों सीखें. सबसे पहले तो अतीत से ठीक विपरीत आज लगभग हर विद्यार्थी ग्रैजुएट स्कूल (पिछले एक दशक में इनकी संख्या भी तेज़ी से कम होने लगी है) जाने के बजाय काम पाना चाहता है. दूसरे, जो काम वे चाहते हैं वे हैं, वित्त, कल्सल्टिंग, सॉफ्टवेयर और इनसे अधिक आम तौर पर "प्रबंधकीय" पद. ये वो काम हैं जिनका संबंध मुश्किल से किसी विषय संबंधी तकनीकी ज्ञान से हो, लेकिन उनके वेतन का पैकेज तकनीकी कामों से

कहीं अधिक भारी होता है. ये काम कहीं अधिक गुरुतर हैं. मूल रूप में तकनीकी कामों के लिए बहुत कम मौके मिलते हैं. अधिकांश कामों की पेशकश कारोबारी विश्लेषक फ़र्में और वे वित्तीय कंपनियाँ करती हैं जहाँ उनका काम स्प्रैडशीट्स के नबरों का मंथन (क्रंच) करना होता है. ऐसी सर्विस में लगी कंपनियाँ आम तौर पर आईआईटी के हाल ही में उत्तीर्ण छात्रों या उन विद्यार्थियों से ही संतुष्ट हो जाती हैं जिनका शैक्षणिक रिकॉर्ड बस ठीक-ठाक ही होता है और बाद में आम तौर पर वे एमबीए में प्रवेश ले लेते हैं. उसमें गणित (जिसका आईआईटी- जेईई चयन करते हैं) की सुविधा भी रहती है. ये विद्यार्थी तकनीकी दक्षता रखते हैं और जहाँ तक अच्छे वेतन का सवाल है, वे उसके लिए बहुत उत्सुक नहीं होते. जो थोड़े-बहुत विद्यार्थी मूलतः तकनीकी शाखा में कोई काम लेते भी हैं, आम तौर पर उनकी हैसियत भी छोटी रहती है और उनका वेतन भी कम ही रहता है. जहाँ तक विद्यार्थियों के परिदृश्य का संबंध है, तकनीकी विषय पर अधिकार बनाये रखने का अब कोई औचित्य नहीं रह जाता, भले ही उनका विषय यांत्रिक इंजीनियरी से संबंधित हो या रासायनिक इंजीनियरी या सिविल इंजीनियरी से संबंधित हो या फिर भौतिकी या रसायन शास्त्र से संबंधित हो, क्योंकि इससे उनके कैरियर पर कोई असर नहीं पड़ता.

चूँकि विद्यार्थी प्रथम वर्ष से ही अपने कैरियर के बारे में सोचने लगते हैं, वे अपने अनुभवी वरिष्ठ सहपाठियों से सलाह लेते हुए उन्हींके नक्शे कदम पर चलने लगते हैं. वे जल्दी से जल्दी अच्छे वेतनवाले काम की तलाश में रहते हैं और यह समझ जाते हैं कि वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों की कोई प्रासंगिकता नहीं है. व्यक्तित्व के विकास से संबंधित सभी प्रकार की गतिविधियों के साथ-साथ कम से कम मेहनत करके भी अपनी शिक्षा पूरी कर लेते हैं. (शान तो इस बात में है कि किसी न किसी उत्सव के आप छात्र प्रबंधक बनें.) इस रास्ते पर चलते हुए बहुत से डिजिटल प्रलोभन हैं, जैसे, फ़िल्में, टीवी शो, पोर्नोग्राफ़ी, वीडियो गेम, संगीत, वैब सर्फ़िंग और सोशल मीडिया. कुछ तो ऐसे रुचिकर विषय भी हैं, जिन्हें आप आधिकारिक तौर पर भी अपना सकते हैं. इनमें आईआईटीज़ के अंदर ही स्थापित बिज़नैस स्कूल और नवोन्मेष/ टैक्नोलॉजी इंक्यूबेशन सैंटर सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं

''लोभ एक अच्छी बात है'', यह मंत्र अब विद्यार्थी बढ़िया पैकेज का सपना देखते हुए अपनाने लगे हैं और कितने ही लुभावने किस्से भी उन्हें बताये जाते हैं कि किस प्रकार एक पुराने विद्यार्थी ने अपनी पहली ही नौकरी में इतना पैसा कमा लिया कि उसने शुरूआत में ही एक कंपनी खोल ली और कई मिलियन डॉलर में एक बड़ी सॉफ़्टवेयर कंपनी को उसे बेच दिया. लेकिन इन विद्यार्थियों ने उनसे यह नहीं पूछा कि क्या बड़ा उद्यमी बनने के लिए हमें अपनी अकादमिक निष्ठा से समझौता करना चाहिए और अपनी मूलभूत क्षमता को कम होने देना चाहिए. इस तरह के किस्सों से हम अकादमिक काम से बचने और अनुचित उपायों को युक्तिसंगत सिद्ध करने की कोशिश करते हैं. यही कारण है कि दूसरे वर्ष के विद्यार्थी भी कारोबारी योजना बनाने लगते हैं या फिर किसी बिज़नैस स्कूल से कोई कम अवधि का कोर्स करने के मंसूबे बनाने लगते हैं, लेकिन तकनीकी विषय और भौतिकी, रसायन शास्त्र और गणित जैसे बुनियादी विज्ञान के विषयों से बचने की कोशिश करते हैं. स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में वे तकनीकी पाठ्यक्रमों से काफ़ी हद तक कट जाते हैं.

अंततः यदि आपेक्षिक रूप में कहा जाए तो केवल वही विद्यार्थी इसके प्रभाव से बचे रह पाते हैं जो लुभावने पे पैकेज और तेज़ी से बढ़ती उद्यमी सफलता के सपने नहीं देखते और अपनी तकनीकी योग्यता को बढ़ाने में लगे रहते हैं. अधिकांश विद्यार्थी अपनी पढ़ाई के साथ बहुत गड़बड़ करते हैं. अब तो नकल करना भी आम बात हो गई है, बल्कि यह भी उद्यम का काम ही माना जाता है और अपनी कक्षाओं में भी नियमित रूप में नहीं जाते. यह दुःख की बात है कि खराब अध्यापन और उबाऊ शिक्षकों के कारण स्थिति बिगड़ती जा रही है. अब तो एक ऐसा दुश्चक्र बन गया है जिसमें विद्यार्थियों की अरुचि और शिक्षकों की उदासीनता के कारण एक दूसरे को बढ़ावा भी मिलने लगा है.

बाहर से देखें तो आईआईडीज़ की चमक-धमक तो अभी-भी बनी हुई है, क्योंकि यहाँ से निकलने वाले सभी स्नातक विद्यार्थियों को कोई न कोई नौकरी तो मिल ही जाती है. शायद ही कोई स्नातक बचता हो जिसे नौकरी न मिलती हो. परंतु इससे

आईआईटीज़ को छोड़कर भारत की शेष उच्च शिक्षा के स्तर का भी पता चलता है. सच तो यह है कि ये संस्थाएँ सार्वजनिक धन का उपयोग करके ऐसे इंजीनियरों का निर्माण करती हैं कि जो आईआईटी में प्राप्त अपनी शिक्षा और ज्ञान का शायद ही कभी उपयोग करते हों. वस्तुतः यदि आईआईटी की अधिकांश मूलभूत शाखाओं में दो-तिहाई प्रवेश कम कर दिया जाए और उसके स्थान पर डैटा विश्लेषण के बड़े मैगा कार्यक्रम चला दिये जाएँ तो विद्यार्थियों को जो पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है और उन नौकरियों में जिन्हें विद्यार्थी अंततः हासिल कर ही लेते हैं, बहुत कम अंतर रह जाएगा !

एक तर्क यह भी दिया जा सकता है कि अमरीका में इंजीनियरिंग की डिग्री लेकर स्नातक होने वाले अधिकांश विद्यार्थी भी अंततः गैर-तकनीकी क्षेत्रों में ही चले जाते हैं. उनको भी अपने विषय के ज्ञान से अधिक लाभ अपनी विश्लेषणात्मक क्षमता का ही मिलता है. लेकिन अमरीकी संस्थाओं से ठीक विपरीत आईआईटीज़ ने विद्यार्थियों की अरुचि, शिक्षकों की उदासीनता और संपूर्ण शैक्षणिक क्षेत्र में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए अपनी इच्छाशक्ति भी नहीं दिखाई. विद्यार्थियों की आकांक्षाएँ तो हर जगह एक जैसी हो सकती हैं, लेकिन शैक्षणिक परिवेश और कार्यमूलक नैतिकता तो अलग-अलग हो ही सकती है और उसी से मूलभूत क्षमता, नैतिक स्तर और यहाँ तक कि स्नातक विद्यार्थियों की विश्लेषणात्मक क्षमता के संदर्भ में भी उनकी मूलभूत गुणवत्ता पर अंततः असर हो ही सकता है. सीधे और सरल ढंग से यही कहा जा सकता है कि कोचिंग और नौकरी से जुड़े मुद्दों को अलग रखकर आईआईटीज़ को सीखने और सिखाने दोनों के ही संदर्भ में ज़िम्मेदारी तय करनी होगी.

भारत की तकनीकी शिक्षा के नेतृत्व से और नीति-निर्माताओं से इक्कीसवीं सदी में आईआईटीज़ की भूमिका को लेकर कुछ तीखे सवाल करने होंगे. यदि शिक्षा और ज्ञान के सृजन के क्षेत्र में फिर से उत्साह का संचार करना है तो यह देखना होगा कि भारत को क्लासिकल इंजीनियरिंग के क्षेत्र में विज्ञान और इंजीनियरिंग के कितने विद्यार्थियों की आवश्यकता होगी? क्या अंडरग्रैजुएट प्रोग्राम की अंतर्विषयक पुनः संरचना से अकादमिक कार्यों में फिर से रुचि जागृत की जा सकती है? दीर्घकालीन दृष्टि से ये प्रश्न और भी कठिन हैं: देश को अपनी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को पूरी तरह से बदलने के लिए क्या उपाय करने होंगे, क्योंकि इस शिक्षा का असर हर प्रकार की आगे की पढ़ाई पर पढ़ता है. भारत किस प्रकार अपने निर्माण क्षेत्र को इतना गतिशील बनाए कि इससे रोज़गार के नये अवसर पैदा हों ताकि जिस उद्देश्य से आईआईटीज़ की स्थापना की गई थी, उसके अनुरूप उनकी अनंत तकनीकी क्षमता का बेहतर उपयोग हो सके ?

शायद सबसे महत्वपूर्ण सवाल तो यही है कि यदि भारत आर्थिक महाशक्ति बनता है तो राष्ट्र निर्माण के क्षेत्र में इसकी सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं की क्या भूमिका होगी? मूलभूत रूप में पुनर्विचार के बिना मात्र वर्तमान संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने से या नये-नये आईआईटीज़ खोलने से यह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता.

अनुराग मेहरा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी), बंबई में कैमिकल इंजीनियरिंग के प्रोफ़ेसर हैं. वह ग्रीष्म (समर) 2014 में कैसी के विज़िटिंग स्कॉलर हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>
मोबाइल : 91+9910029919.